स्वाद का जैविक, जिनेटिक आधार

डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन

पारंपरिक तमिल व्यंजन अरु सुवाई उनवु छः अलग-अलग स्वाद जगाता है - मीठा, खट्टा, खारा, कड़वा, तीखा और संकोचक (एस्ट्रिंजेन्ट)। हममें से कितने लोग हैं जो सारे छः का लुत्फ ले पाते हैं? और ऐसे कितने और व्यंजन हैं - अमरीकी, युरोपीय, भूमध्यसागरीय, अफ्रीकी, अरबी, दक्षिण-पूर्वी एशियाई, चीनी या प्रशांत क्षेत्र के - जो इन सारे स्वादों को जगा पाते हैं? युरोपीय लोगों को हमारा भोजन और हमें उनका भोजन उतना क्यों नहीं रुचता?

उक्त सवाल सिर्फ आदतों या समुदायों से सम्बंधित नहीं हैं। भोजन वैज्ञानिक लोग स्वाद के पारखियों और स्वाद के उस्ताद पारखियों के बीच भेद करते हैं। एशिया, अफ्रीका व लातिनी अमरीका के कई समुदायों के लोग स्वाद के उस्ताद पारखी होते हैं जबकि कॉकेशियाई लोग मात्र पारखी होते हैं।

ऐसा लगता है कि हमारी जीभ पर फंजीफॉर्म उभारों (या कुकुरमुत्ते जैसे उभारों) की संख्या ज़्यादा होती है, जिनमें से प्रत्येक में स्वाद की ग्रंथियां पाई जाती हैं। इसीलिए हमारी जीभ पर स्वाद-ग्रंथियों की विविधता कहीं अधिक होती है। तब इसमें अचरज की क्या बात है कि तमिल लोगों को खानपान के मामले में 'नक्कू नील्लम' (बहुत नखरैल) कहा जाता है। विभिन्न स्वाद ग्रंथियां हमारी जीभ, मुलायम तालू, ग्रसनी और एपिग्लॉटिस (स्वांस नली के ढक्कन) पर पाई जाती हैं।

अर्थात स्वाद का एहसास मात्र सामाजिक या सामुदायिक लक्षण नहीं है बल्कि इसका कुछ जीव वैज्ञानिक और शायद जिनेटिक आधार भी है। मानव जीनोम की बढ़ती समझ के साथ वैज्ञानिक हर स्वाद समूह का आधार अलग-अलग देख पा रहे हैं और यह समझ पा रहे हैं कि इन्सानों में स्वाद के प्रति इतनी अलग-अलग रुचियां क्यों पाई जाती हैं?

मीठे, कड़वे और ज़ायकेदार स्वाद के ग्राही वास्तव में प्रोटीन होते हैं और ये प्रोटीन जीपीसीआर समूह के प्रोटीन होते हैं। दूसरी ओर, नमकीन और खट्टेपन के ग्राही वे प्रोटीन होते हैं जो आयनों का परिवहन कोशिका झिल्लियों के आर-पार करने का काम करते हैं।

तो लगता है कि उपरोक्त प्रोटीनों के जीन्स का विश्लेषण तथा उनमें विविधता के अध्ययन से स्वाद को समझने में मदद मिलेगी। हो सकता है कि इसका मानव स्वास्थ्य से भी सम्बंध हो। उदाहरण के लिए मिष्ठान्न प्रेमी लोगों को मधुमेह होने की आशंका ज़्यादा होती है। यह पता चला है कि शक्कर का स्वाद चखने के लिए लोगों में जो जीन ज़िम्मेदार होते हैं, उनमें काफी विविधता होती है। यह जीन एक ऐसे प्रोटीन का सूत्र है जिसे मीठा ग्राही या टैसिर कहते हैं। यह सारे स्तनधारियों में पाया जाता है और इसके दो घटक होते हैं - टैसिर-2 व टैसिर-3। यूएस नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ हेल्थ में डॉ. डेनिस ड्रायना की प्रयोगशाला ने टैसिर-3 की डीएनए श्रृंखला को लेकर काफी व्यापक सर्वेक्षण किया है। परिणामों से

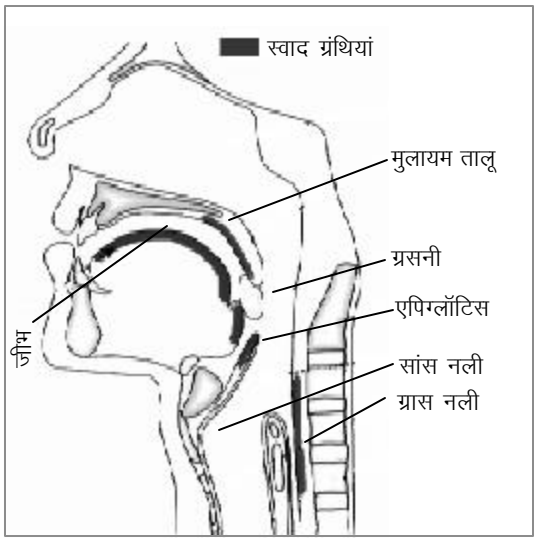

पता चला कि टैसिर-3 की डीएनए श्रृंखला के पूर्व के एक खंड के एक क्षार में परिवर्तन से मीठे स्वाद की अनुभूति में विविधता पैदा हो जाती है।

उदाहरण के लिए उप-सहारा आबादी में कमोबेश क्षार टी पाया जाता है। अन्य लोगों, खासकर ढंडे इलाकों के लोगों की तुलना में ये लोग मीठे के प्रति कम संवेदी होते हैं। इसी प्रकार से अफ्रीकी लोगों की अपेक्षा युरोपीय लोगों को मीठा ज़्यादा भाता है।

ड्रायना के समूह ने करंट बायोलॉजी के अगस्त 2009 के अंक में प्रकाशित अपने शोध पत्र में टैसिर-3 का विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए बताया है कि कटिबंधीय क्षेत्रों और ठंडे इलाकों में रहने वाले लोगों की डीएनए श्रृंखला में इन अंतरों का जैव विकास की दृष्टि से महत्व हो सकता है। कटिबंधीय क्षेत्रों में गन्ने, आम और अन्य मीठे फलों की बदौलत शक्कर प्रचुरता से उपलब्ध है। ऐसे इलाकों में शक्कर की थोड़ी-सी मात्रा को महसूस करने की क्षमता का उतना महत्व नहीं है जितना कि शक्कर के अभाव वाले ठंडे इलाकों में है।

यह प्राकृतिक चयन की एक मिसाल है कि कैसे किसी क्षेत्र की पर्यावरण की परिस्थियां किसी जिनेटिक टाइप के संचयन में मदद करती है। ड्यूक विश्वविद्यालय के डॉ. जे.डी. मेनलैण्ड और एच. मात्सूनामी ने करंट साइन्स के उसी अंक में डॉ. ड्रायना के शोध पत्र पर अपनी टिप्पणी में एक और महत्वपूर्ण बिंदु उठाया है। टैसिर-3 जीन की श्रृंखला में इस एक-क्षारीय परिवर्तन की एक अहम भूमिका और भी है।

इसकी वजह से इस प्रोटीन की अंतर्क्रिया एक अन्य ग्राही से संभव होती है। वह ग्राही है ज़ायकेदार स्वाद का। यह वह स्वाद है जैसा सोया सॉस, गौमांस, भेड़ के मांस और पार्मेसन चीज़ में मिलता है। तो क्या यह माना जाए कि जो परिवर्तन मीठे की अनुभूति को प्रभावित करता है वह ज़ायकेदार स्वाद पर भी असर डालता है? और क्या यही चीन में पसंद किए जाने वाले खट्टे-मीठे व्यंजनों का आधार है?

एनआईएच द्वारा किए गए एक अध्ययन में पता चला था कि बिल्लियों, चीतों और बाघों में टैसिर-3 का ग्राही तो सामान्य होता है मगर प्रोटीन का दूसरा घटक टैसिर-2 सक्रिय नहीं होता। इस खोज के आधार पर शोधकर्ताओं ने यह अटकल लगाई है कि हो न हो, बिल्लियों में मांसाहारी व्यवहार के विकास में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका होगी। तो सवाल उठता है कि क्या मांसाहारी जंतुओं में ठीक-ठाक काम करने वाला टैसिर-2 ग्राही होता है या नहीं? या दूसरे शब्दों में हम यह भी पूछ सकते हैं कि मांसाहार पहले आया था या शाकाहार? जैव विकास का जीव विज्ञान इस सवाल का जवाब ज़रूर देगा। ***(स्रोत फीचर्स)***

स्रोत पत्रिका में विज्ञापन की दरें

- **कवर 4 (रंगीन) - 6000 रुपए**
- **कवर 2, कवर 3 (रंगीन)** - 5500 रुपए प्रत्येक

- **अंदर का पूरा पेज (ब्लैक एंड व्हाइट) - 3000 रुपए**
- **अंदर का आधा पेज (ब्लैक एंड व्हाइट) - 2000 रुपए**
- **अंदर का एक चौथाई पेज (ब्लैक एंड व्हाइट) - 1000 रुपए**

12 अंकों के लिए 25 प्रतिशत डिस्काउंट